International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 9; September 2016; Page No. 335-338

रीवा जनपद में भूक्षरण का पर्यावरणीय प्रभाव

[1] अनिल कुमार पाण्डेय, [2] डॉ0 सुशीला द्विवेदी

[1] शोध छात्र (भूगोल) शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय एवं उत्कृष्टता केन्द्र रीवा, मध्य प्रदेश, भारत
[2] सहा. प्राध्यापक (भूगोल) शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय एवं उत्कृष्टता केन्द्र रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

सारंश
रीवा जनपद का तस्तरीनुमा स्वरूप इस बात को स्पष्ट करता है कि यह क्षेत्र समुद्र के तत्वों से भरा था। भूगार्भिक दृष्टि से रीवा जनपद में परतदार चट्टानों की प्रधानता पायी जाती है। जनपद में पाये जाने बाले मोटे बालू का पत्थर परतदार चट्टान भी उक्त स्थिति को स्पष्ट करते है। रीवा जनपद के जवा, त्यौथर, नईगढ़ी, हनुमना, मऊगंज एवं हनुमना विकासखण्ड में लगभग 263 ग्रामों के 354 हजार व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से भू–क्षरण जनित समस्याओं से ग्रसित हैं। भू–क्षरण एक भौतिक प्रक्रिया है, जो विभिन्न प्रकार से मानव के लिए हानिकारक सिद्ध होती, इसके परिणाम स्वरूप मानव की सामाजिक–आर्थिक क्रियाएँ, सांस्कृतिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य एवं समस्त प्रकार के क्रिया कलापों को प्रभावित करते हुए अनेक प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं के उद्भवीत करती है।

मूल शब्द: रीवा जनपद, भूक्षरण, सीमांकन, पृष्ठभूमि एवं पर्यावरणीय प्रभाव।

प्रस्तावना
हमारे पृथ्वी गृह की उम्र लगभग 7500 मिलियन वर्ष है। अपने उम्र की इस लम्बी यात्रा में पृथ्वी ग्रह के उपरी भाग (सरफेस) के स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान में त्रिस्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत महासागर महाद्वीप प्रथम श्रेणी के भूआकार, स्थलमण्डल के अन्तर्गत पर्वत,पठार एवं मैदान द्वितीय श्रेणी एवं जलप्रपात, काठी, दर्रा, शंक्वाकार पहाड़ी आदि तृतीय श्रेणी के भूआकार हैं।[1] इन सभी प्रकार के भूआकारों के विकास के भौमकीय इतिहास में पृथ्वी की विभिन्न हलचलों परिवर्तनकारी शक्तियों एवं समतलकारी शक्तियों की ही भूमिका रही है। भारतीय भू–वैज्ञानिक इतिहास में सतपुड़ा की पचमढ़ी श्रेणी के उद्भव एवं विकास में अरावली के अवशिष्ट पदार्थों की भूमिका का मिलना इस तथ्य का जीवित प्रमाण है।[2] निष्कर्ष रूप में पृथ्वी की सतह में परिवर्तनों का होना परिवर्तनकारी एवं समतलकारी शक्तियों का परिणाम है।[3]

जहाँ तक समतलकारी शक्तियों का प्रश्न है, परिवर्तनकारी शक्तियों के परिणाम स्वरूप धरातल पर विकसित विसमताओं को समतलकारी शक्तियॉ कॉट–छॉट कर नीचा करती रहती है, जिसका परिणाम उच्चावचीय विषमताएँ एवं विभिन्न भूआकारों का विकास है। इस प्रकार 'निम्मन' को प्रक्रिया शास्वत एवं निरंतर चलने वाली है, जो परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के कारण पर्यावरणीय परिवर्तन प्रस्तुत करती है। कभी–कभी यह परिवर्तन मानव समुदाय के लिये एक आपदा के रूप में उपस्थित होकर सम्पूर्ण मानव जाति को प्रदोंकित करता है।

भूक्षरण समतलकारी शक्तियों का प्रतिफल है।[4] इस प्रकृया के प्रक्रमों में स्थैतिक एवं गतिशील भौतिक एवं जैविक तत्व शामिल रहते हुये निरन्तर धरातलीय भाग को कॉट–छॉट कर नीचा करते रहते है। भूक्षरण का सीधा सम्बन्ध धरातल पर अवस्थित चटट्ानों के कटाव की क्रिया से सम्बन्धित है। विभिन्न विद्वानों द्वारा भूक्षरण को अलग–अलग रूप में व्याख्या की गई है। कुछ विद्वानों ने मृदा की निचली परत एवं रिगोलिक के क्षरण कार्य को भी इसके अन्तर्गत समाहित किये हैं। सामान्य रूप में चूँकि सतह पर मृदा के निक्षेप की अधिकता पाई जाती है, इसलिये मृदाक्षरण को ही भूक्षरण के रूप में अधिक मान्यता देते हुये इनका विश्लेषण किया गया है, जबकि वास्तुस्थिति के अनुसार उन सभी शैल दृश्यांश का कारण भूक्षरण है, जो संगठनात्मक प्रक्रिया में मूल चट्टान से अलग हुये चट्टानों के चूर्ण हों। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मृदा की संरचनात्मक विशेषताओं में मूल चट्टानों के अतिरिक्त उनकी उत्पादकता की संरचनात्मकता भी समाहित होती है, जिनका विकास समय के साथ स्थानिक जैविक तत्वों एवं आभारी चट्टानों के पारस्परिक संयोग से होता है,[5] किन्तु यदि किसी शैल दृष्यांश के उपरी भाग में मृदा के निक्षेप को ही यह आवश्यक नहीं, किन्तु प्रक्रमों के प्रभावोत्पादकता के कारण ऐसे शैल दृष्यांश भी क्षरित होते हैं। अतः भूक्षरण के अन्तरगत धरातलीय पृष्ठ पर उपस्थित ठोस शैल दृष्यांश का कटाव भूक्षरण की परिधि में सम्मिलित होता है।

शोध विधि
प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के प्रयोग द्वारा विश्लेशणात्मक विधि के उपयोग द्वारा पूर्ण किया गया है। द्वितीयक आंकड़े रीवा जनपद में प्रदूशण विभाग से प्राप्त किये गये है, जबकि प्राथमिक आंकड़ों को क्षेत्रीय सर्वेक्षण में नमूना चयन विधि द्वारा किये गये साक्षात्कार एवं अनुभवात्मक विधि द्वारा संग्रहण किये गये है।

अध्ययन क्षेत्र परिचय
भारत वर्ष का हृदय स्थल मध्य प्रदेश के उत्तरी पूर्वी किनारे में 24°18′ से 25°12′ उत्तरी अंक्षाश एवं 81°2′ पूर्वी देशान्तर से 82°20′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। रीवा जनपद का नाम नर्मदा नदी के प्राचीन नाम "रेवा" पर आधारित है। इस जिले का कुल क्षेत्रफल 6287.5 वर्ग कि.मी. है। इस जिले की उत्तर से दक्षिण की अधिकतम दूरी 105 कि.मी. एवं पूर्व से पश्चिम की अधिकतम लम्बाई 125 कि.मी. है। प्रशासकीय दृष्टि से इस जिले में सात तहसीले– हुजूर, रायपुर कर्चु., गुढ, मऊगंज, नईगढ़ी, हनुमना, सिरमौर, मनगवाँ, सेमरिया, त्योंथर तथा जवा एवं 9 विकासखण्ड – रीवा, रायपुर, मऊगंज, नईगढ़ी, हनुमना, सिरमौर, गंगेव, त्योंथर एवं जवा है।

राजनीतिक सीमांकन
रीवा जिले के उत्तरी भाग में उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद एवं कर्बी जिले, दक्षिण की ओर मध्यप्रदेश का सीधी जिला तथा पूर्व की ओर

उत्तर प्रदेश का मिर्जापुर जिला एवं पश्चिम की ओर मध्यप्रदेश का सतना जिला इस जिले की सीमा निर्धारित करते है। रीवा जिले का मानचित्र एक समद्विवाहुत्रिभुज के समान है जिसका आधार सतना जिले से लगा हुआ है, तथा इसकी दो लम्बी भुजाएँ जिले के पूर्व की मऊगंज तहसील में एक केन्द्र विन्दु पर मिलते है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सफेद शेरो की जननी के लिए विश्व प्रसिद्ध रीवा जिला प्राचीन रीवा रियासत की राजधानी तथा वर्तमान में रीवा संभाग का संभागीय मुख्यालय है। रीवा का नामकरण मैकल पर्वत के निकट अमरकंटक नर्मदा कुण्ड से निकलने वाली नर्मदा नदी के दूसरे नाम 'रेवा' पर आधारित है।[6] रीवा शब्द 'रेवा' का अपभ्रंश है। रीवा का प्राचीन नाम रणवहादुर गंज था। महाकाव्य रामायण तथा महाभारत काल में विन्ध्य क्षेत्र मे निशाद निवास करते थे। ईशा पूर्व दूसरी एवं तीसरी शताव्दी में यह क्षेत्र मौर्य शासकों के अधीन था। चौथे एवं पांचवी शताब्दी में यह क्षेत्र मगध साम्राज्य के अधीन रहा। मध्य युग में कल्चुरी इस क्षेत्र में प्रभावी रहे। कर्चुलियों ने लगभग 300 वर्षो तक इस क्षेत्र पर राज्य किया। 9वी शताब्दी में परिहार, राजपूतों का आगवन हुआ था तथा 11वी शताव्दी में चंदेलों को मुसलमानों द्वारा भगा दिये जाने पर इस क्षेत्र में आये और राज्य किया। 13वी शताव्दी में बघेल शासकों ने राज्य किया। कालान्तर में रीवा बघेलखंड की राजधानी व प्रमुख नगर के रूप में परिणित हो गया। सन् 1503 में बघेल राजा बिक्रमादित्य ने शेरशाह द्वारा बनवायें महलों पर अधिकार कर अधूरे किले को 1602–15 के मध्य पूर्ण करवाया। इसी समय प्रसिद्ध महामृत्युंजय मन्दिर का निर्माण कराया जो किला बीहर व बिछिया नदियों के संगम के किनारे पर स्थिति है। तब से स्वतंत्रता के पूर्व तक रीवा राज्य बघेलों के अधीन रहा। स्वतंत्रता के बाद रीवा रियासत विन्ध्य प्रदेश राज्य की राजधानी के रूप में स्थापित हुआ जिसका विलय 1 नवम्बर 1956 में म.प्र. में हो गया तथा उसे संभागीय एवं जिला मुख्यालय के रूप में प्रतिस्थापित किया गया।

भौमिकीय संरचना

किसी क्षेत्र की भौमकीय संरचना उस क्षेत्र के धरातलीय इतिहास को स्पष्ट करती है। रीवा जनपद के अधिकांश भाग में विन्ध्यन शैल क्रम की संरचना पायी जाती है। विन्ध्यन शैल रीवा जनपद में 3037 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। जपपद के उत्तरी क्षेत्र में 984 वर्ग किमी. क्षेत्र में वन है, जो भौमिकीय संरचना की दृष्टि से नवीन है। इस मैदान का निर्माण नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी से हुआ है। विन्ध्यन संरचना के पूर्व के इतिहास के सम्बंध में अभी तक जानकारी प्राप्त नही की जा सकी है। अतः विन्ध्यन संरचना ही रीवा जनपद के भौमिकीय संरचना के अध्ययन में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भूगर्भवेक्ता "रेण्डनवर्ग"[7] के अनुसार रीवा जनपद के धरातलीय स्वरूप के निर्माण में समुद्री क्रियाओं का योगदान रहा है। इनके अनुसार पूर्व काल में इस क्षेत्र में विशाल समुद्र लहराता था जिसमें हवाओं की दिशा के प्रभाव से समुद्री लहरों की दिशा उत्तर की ओर थी।

रीवा जनपद का तस्तरीनुमा स्वरूप इस बात को स्पष्ट करता है कि यह क्षेत्र समुद्र के तत्वों से भरा था। "मैलेट महोदय" ने 'रेण्डनवर्ग' की विचारधारा से असहमति प्रकट करते हुए जिले के भौतिक स्वरूप के निमार्ण में हवाओं की क्रिया को अधिक महत्वपूर्ण माना है। भूगार्भिक दृष्टि से रीवा जनपद में परतदार चट्टानों की प्रधानता पायी जाती है। जनपद में पाये जाने बाले मोटे बालू का पत्थर परतदार चट्टान भी उक्त स्थिति को स्पष्ट करते है। इस जनपद में चूना पत्थर की संरचना से युक्त क्षेत्र दक्षिण पश्चिम की ओर है। रीवा जनपद की भूगार्भिक परते अधिकांश स्थानों में क्षैतिज है। कुछ ही क्षेत्रों में भूगार्भिक परते लम्वत् है, जो भौमिकीय संरचना को जटिल वना देती है।

भूक्षरण का पर्यावरणीय प्रभाव

पृथ्वी का बाह्य भाग समतलकारी शक्तियों के प्रभाव के कारण निरन्तर अपरदित होता रहता है। हमारी पृथ्वी की बाहर परत सियाल के ऊपरी सतह पर मृदा का विकास होता है। मृदा का गहरा सम्बन्ध सभ्यता से जुड़े होने के कारण जहाँ भू–क्षरण अधिक प्रभावी होता है, वहीं उस प्रदेश के पर्यावरण को स्वाभाविक रूप में प्रभावित करते हुए विभिन्न समस्याओं की उत्पत्ति का कारण बनता है।

भू–क्षरण एक विश्वव्यापी समस्या है। कुछ प्रदेशों में जलवृष्टि तो कुछ प्रदेशों में वायु, हिमानी, भूमिगत जल एवं सागरीय जल के क्रियाओं के कारण भू–क्षरण सम्पादित होता है। भारत में भू–क्षरण की समस्या का सबसे बड़ा श्रोत वर्षा से प्राप्त प्रवाही जल है। वर्ष 2006 के शासकीय प्रतिवेदन के अनुसार 268362 हेक्टेयर क्षेत्र भू–क्षरण द्वारा प्रभावित बजट 2014 की स्थित में बढ़कर 325261 हेक्टेयर हो गया है, जो देश के कुल क्षेत्रफल का 7.8 प्रतिशत भाग है। कुछ भाग तो भू–क्षरण के कारण बीहड़ के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। अध्ययन क्षेत्र रीवा जनपद इन पर्यावरणीय प्रभाव, समस्याएँ एवं परिस्थितियों से भिन्न नहीं है। अपनी विशिष्ट जलवायु जनित विशेषताओं के कारण इस भू–भाग में चादरवत् एवं नालीदार दोनों प्रकार से भू–क्षरण होता है। रीवा जनपद अपने भौतिक, संरचनात्मक, उच्चावचीय एवं जलवायु जनित विशेषताओं के कारण लगभग 16.45 प्रतिशत भू–भाग बीहड़ के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। भू–क्षरण का सीधा प्रभाव पर्यावरण पर देखने को मिल रहा है, प्रवाही जल की अपरदनकारी क्रियायों के परिणामस्वरूप जहाँ उपजाऊ मृदा अपरदित होकर क्षेत्र से बाहर प्रवाहित हो जाती है, वहीं उसका प्रभाव अधोभौतिक एवं सतही जल संसाधन की कुल उपलब्धता, वानस्पतिक सघनता, धरातलीय विषमता एवं इनसे सम्बन्धित आर्थिक क्रियाएँ, पशुपालन, कृषि आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जिससे आर्थिक विकास प्रभावित होकर समग्र विकास को प्रभावित कर देता है। जबकि आये दिन प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा, भूस्खलन) आदि की बारम्बारता में अभिवृद्धि होती है। रीवा जनपद के जवा, त्यौथर, नईगढ़ी, हनुमना, मऊगंज एवं हनुमना विकासखण्ड में लगभग 263 ग्रामों के 354 हजार व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से भू–क्षरण जनित समस्याओं से ग्रसित हैं। भू–क्षरण एक भौतिक प्रक्रिया है, जो विभिन्न प्रकार से मानव के लिए हानिकारक सिद्ध होती, इसके परिणाम स्वरूप मानव की सामाजिक–आर्थिक क्रियाएँ, सांस्कृतिक, राजनैतिक, स्वास्थ्य एवं समस्त प्रकार के क्रिया कलापों को प्रभावित करते हुए अनेक प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं के उद्भवीत करती है। भू–क्षरण की तीव्रता धरातल के ऊपरी भाग में स्थित जीवपोशी मृदा संस्तरों के विकास हेतु भोजन की आपूर्ति करती है, उन्हे अपरदित कर क्षेत्र की सफल पोषण क्षमता को अस्त–व्यस्त कर देते हैं। इस परिवर्तनशील क्रिया का प्रभाव समग्र भौतिक एवं धरातलीय तत्वों के साथ–साथ जैविक तत्वों पर पड़ता है, जिसका परिणाम जैव विविधता में ह्रास तथा क्षेत्र के जैव भार में कमी होना है। साथ ही इसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है।

भूक्षरण[8] एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है, जो उपजाऊ भूमि को बाँझ बना देती है, जब धरातल की मिट्टी किसी भी साधन से स्थानान्तरित कर दी जाती है, तो उसे भूक्षरण कहा जाता है। भू–क्षरण से प्रभावित धरातल अपना स्वाभाविक गुण खो देता है, जिससे उसकी उत्पादन क्षमता घट जाती है तथा पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र के निर्माण में मृदा की अहम भूमिका रहती है। क्योंकि इसी में वनस्पतियों का उद्भव एवं विकास होता है तथा

एक स्वच्छ एवं स्वस्थ पर्यावरण का विकास होता है। मृदा मूल–भूत चट्टानों के चूर्ण एवं नष्ट होने तथा जीव जन्तुओं के अवशेष एवं घास–वनस्पति के नष्ट होने से बनती है। मृदा में निहित खनिज लवण जीवाँश और जल पौधों को भोजन प्रदान करते हैं, जिसके फलस्वरूप मृदा की गुणवत्ता, इसकी रचना, निर्माण प्रक्रिया और पोषक तत्वों पर आधारित होती है। पाँच सेन्ठी मीटर मोटी परत मिट्टी को पूर्णतः विकसित होने में 500 वर्ष लग जाते हैं। जबकि उसके क्षरण में केवल पाँच घंटा समय लगता है। अतः इस बहुमूल्य प्राकृतिक उपादान का संयमित उपयोग और संरक्षण जीवन क्रम को सतत बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है। मृदा क्षरण से पारिस्थितिकी तंत्र एवं पर्यावरण के विकास में व्यवधान उत्पन्न होता है, क्योंकि भू–क्षरण से धरातल जैसी पृथ्वी की महत्वपूर्ण परत वनस्पति विहीन हो जाती है, जिससे जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। भूमि को बंजर बनाने में सबसे बड़ा प्रभाव भू–क्षरण का होता है, क्योंकि इस प्राकृतिक घटना से निपटने के लिए साधन का अभाव है।

भूक्षरण का पर्यावरण तत्वों पर प्रभाव

भूक्षरण स्वयं भौतिक पर्यावरण का एक घटक तत्व है, समतलकारी शक्तियों के धरातल पर पारस्परिक क्रियायों का प्रतिफल होता है, किन्तु इस प्रकृया के परिणाम का प्रतिफल पर्यावरण के अन्य भौतिक तत्वों को प्रभावित भी करता है। भूक्षरण का पर्यावरण के जिन भौतिक तत्वों को प्रभावित करता है, निम्नानुसार हैं–

1. स्वाकृति पर प्रभाव
2. जलीय संरचना पर प्रभाव
3. वनस्पति पर प्रभाव
4. जैविक विविधता पर प्रभाव
5. मृदा पर प्रभाव
6. अन्य प्रभाव

भू–क्षरण नियंत्रण के उपाय

भू–क्षरण अथवा मृदा क्षरण एक ऐसी प्राकृतिक घटना है, जो उपजाऊ भूमि के बाँ/बीहड़/बंजर बना देती है। इस घटना के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं –

1. भू–क्षरण वाली भूमि में वृक्षारोपण करना।
2. पशु चारण पर नियंत्रण रखना।
3. ढाल के विपरीत दिशा में खेतों की जुताई करना।
4. ढाल युक्त खेतों में सीढ़ीदार मेंड़ बन्दी करना।
5. हवा की गति को नियंत्रित करने के लिए वन पेटी का विकसित करना।
6. जल निकासी के रास्तों का निर्माण करना।
7. बाढ़ नियंत्रण केन्द्र स्थापित करना।
8. मिट्टी को बांधने अथवा भू–क्षरण को रोकने वाले पौधों के रोपण को प्राथमिकता देना।
9. वर्षा के जल को डेम अथवा बाँध बना कर संग्रहित करना।

पर्यावरणीय समस्याएँ – आर्थिक समस्याएँ

मानव सहित समस्त जीवधारी परिस्थैतिकी असन्तुलन एवं पर्यावरणीय समस्याओं के कारण विनास की राह पर चल रहे हैं। इन समस्याओं की जड़ में मानव प्रगति के नाम पर की गई प्राकृतिक अवमानना है। आज मानव समाज इस बात पर गर्व करता है कि जो आर्थिक प्रगति तीन–चार हजार वर्षों में मानव न कर सका वह प्रगति के बल तीन सौ वर्षों में कर दिया गया है। विचारणीय है कि आर्थिक, सामाजिक प्रगति के नाम पर किया गया तीव्र विकास किस सीमा तक अपनी सार्थकता सिद्ध करने में सफल है। सर्व ज्ञात है कि तीव्र आर्थिक विकास का आधार तकनीकी विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान जनित औद्योगिक प्रगति, तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि, कृषि एवं पशुपालन का विकास, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है। भौतिक सुख पर आधारित उच्च जीवन स्तर आधुनिकता का प्रतीक बन गया है। प्रगति की दौड़ में मनुष्य यह भूल गया है कि पर्यावरण भी उसके जीवन का अभिन्न अंग है। अनियंत्रित संसाधन दोहन, के नाम पर किया गया प्रदूषण, हरित क्रान्ति एवं तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण ऐसी पर्यावरणीय समस्याएँ प्रगट होने लगी हैं, जिनका निदान ढूढ़ना मानव समाज के लिए अनिवार्य होता जा रहा है। यह सर्व विदित है कि आर्थिक प्रगति में ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु संसाधनों के अनियोजित एवं अविवेकपूर्ण दोहन से सम्पूर्ण पर्यावरण दूषित हो गया है। जिससे मानव सहित अन्य जीवों के लिए संकट की स्थिति प्रगट होने लगी है। अतः मानवीय क्रियाकलापों का पर्यावरण एवं पारिस्थैतिकी के सन्दर्भ में विश्लेषण आज की आवश्यकता बन गई है। एवं आज संसाधनों के विदोहन जितना आवश्य है, उतना ही उससे होने वाली हानि का निराकरण भी उतना ही जरूरी है। इसके साथ ही यह भी देखना जरूरी है कि इसका पर्यावरण पर क्या कुप्रभाव पड़ सकता है। इसी तरह अगर पेड़ काटना जरूरी है तो वृक्षा रोपण भी उतना जरूरी है। अगर फसल उत्पादन के लिए रसायनिक खाद आवश्यक है तो उससे होने वाली हानि का निराकरण भी आवश्यक है। इस प्रकार आर्थिक विकास के साथ अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ प्रश्न चिन्ह बनती जा रही हैं, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया है। अतः मानवीय अनुक्रियाओं का मूल्यांकन पर्यावरण के सन्दर्भ में किया जाना आज की आवश्यकता है। क्योंकि मानव द्वारा की गई असावधानियों का भयंकर रूप सांस्कृतिक, आर्थिक विकृतियों के रूप में प्रगट होने लगा है। अतः पर्यावरणीय प्रभाव एवं समस्याएँ आर्थिक क्रियाकलाप से जुड़ी है।

आधुनिक आर्थिक एवं सामाजिक विकास की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के मध्य से प्रारम्भ है, जब वस्तु निर्माण में यंत्रों और ऊर्जा के साधनों का प्रचुर मात्रा में उपयोग प्रारम्भ हुआ। आधिक उत्पादन के लिए कृषि के क्षेत्र में दिन प्रतिदिन नये उपकरणों का प्रयोग शोध एंव तकनीकी सुधार के द्वारा आर्थिक प्रगति का नया अध्याय शुरू हुआ। किन्तु भूमि में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए कृत्रिम खाद, जल एवं जुताई की जो पद्धति विकास के नाम पर प्रयुक्त हुई उसने मृदा, जल, एवं जल तथा हवा के द्वारा भू–क्षरण पर्यावरण को विघटन की ओर ढकेल दिया। हरित क्रान्ति से अधिक अन्न प्राप्त किया गया लेकिन मृदा की गुणवत्ता में घुन लग गया। क्योंकि इसका उपयोग निर्दयता पूर्वक किया गया। अधिक उत्पादन के लिए अधिकाधिक रसायनिक खाद, उन्नत बीज, सिंचाई, कीटनाशक दवाएँ तथा अन्य तकनीकी उपायों को बेरहमी से प्रयोग किया गया, जिसके कारण क्षेत्र की उपजाऊ भूमि बंजर एवं बीहड़ में परिवर्तित हो गई।

कृषि उत्पादन में लागत खर्च दिनोंदिन बढ़ गया है। सूखे और नये कर की बाढ़ से होने वाली क्षति यहाँ के किसान की कमर तोड़ देती है। कृषि मजदूरों की मजदूरी देना किसान के लिए कठिन हो रहा है। क्योंकि जिस गति से पर्यावरण का सन्तुलन एवं लागत खर्च दिनोंदिन बढ़ रहा है, उस गति से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं आ रहा है। फसल रक्षा के नाम पर कीटनाशकों का प्रयोग भयंकर प्रभाव डाल रहा है, डी.डी.टी का प्रयोग प्रतिबन्धित कर दिया गया है। कीटनाशक दवाएँ पौधों के माध्यम से जीवों के शरीर में पहुंच रही हैं। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए किस प्रकार कृषि उत्पादन बढ़ाया जाय, कृषि वैज्ञानिकों का विचार है कि बिना कीट नाशक, कम रासायनिक उर्वरक के प्रयोग से भी उचित सिंचाई व्यवस्था आदि से पर्यावरणीय समस्याओं पर नियंत्रण, अनुकूल कृषि उत्पादन

में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार आर्थिक समस्याओं के निराकरण हेतु भूक्षरण में नियंत्रण, कृषि सुधार, पर्यावरणीय अनुकूलता के परिप्रेक्ष्य में ही योजनाबद्ध किया जाना चाहिए। एक सुविधा के लिए अनेंक पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म देना हानिकारक अथवा विनाशकारी प्रमाणित हो सकता है। अतः भू–क्षरण के प्रभाव से निम्न लिखित आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. कृषित भूमि का क्षेत्र दिनोंदिन घटता जा रहा है, जिसके कारण इस क्षेत्र में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है।
2. भू–क्षरण के कारण भूमि बीहड़ एवं बंजर के रूप में परिवर्तित हो रही है।
3. भू–क्षरण के प्रभाव से भूमि की उर्वराशक्ति समाप्त हो रही है। प्रति हेक्टेयर कृषि उत्पादन घट रहा है, जिस कारण क्षेत्र में भोजन आपूर्ति अथवा खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हुई हैं।
4. भू–क्षरण से नदियों की बाढ़ आपदा में वृद्धि हुई है। बाढ़ की तबाही का प्रभाव इस क्षेत्र में टोन्स और उसकी सहायक नदियों के तटवर्ती भाग में स्थित गाँवों पर पड़ता है, इन गावों में मुख्य रूप से कसियारी, कोनी, जनकहाई, नीबा, भनिगवां, लूक, जोन्हा, करौह, नगवां, सितलहा, पटेहरा, पुरौना, गाढ़ा आदि गावों की खरीफ फसल नष्ट हो जाती है।
5. भूमि क्षरण के प्रभाव से अनेक बहुल्य पादप प्रजातियाँ समाप्त हो रही हैं, जो मानव के जीवन में औषधि के रूप में प्रयुक्त होती रही हैं।
6. नदियों में भयंकर बाढ़ का मुख्य कारण मानव द्वारा अनियंत्रित भूमि का उपयोग एवं भूमि उपयोग से उत्पन्न भू–क्षरण है। सितम्बर 1997, सितम्बर 2003 एवं सितम्बर 2016 में टोन्स एवं उसकी सहायक नदियों में भयंकर बाढ़ से सम्पूर्ण विकासखण्ड में लगभग 40 हजार हेक्टेयर भूमि की फसल नष्ट हुई है। जिसका प्रभाव किसानों की अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ा है। साथ ही अधिक लोग बाढ़ से बेघर हो चुके हैं, किसानों के खेतों में बंधे हुए पशु–मवेशी मौत के घाट उतरे हैं।

सन्दर्भ

1. सवीन्द्र सिंह – भूआकृति विज्ञान के मूल तत्व, वसुन्धरा प्रकाशन, दाउदपुर, गोरखपुर पुर्नमुद्रण – पृ. 02, 2006।
2. एन. एल. डोंगरें – Geomordhic study of panchmadiregion : A Geographical Analysis] un publish PHD Thesis APSU Rewa, 2003, p 67.
3. सवीन्द्र सिंह – भूआकृति विद्वान के गुण तत्व, पृ 67–68, 2006।
4. सवीन्द्र सिंह Environmental Geography :Prayag pustak bhawan Allahabad, p 296, Edition, 1995.
5. पी.एस. नेगी– पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण गंगोत्री प्रकाशन मेरठ – 2006–2007 पृ0 – 222।
6. अग्निहोत्री – गुरू रामप्यारे – रीवा राज्य का इतिहास पृ. 04.।
7. Rendnberg – Geology of Satna and Panna with reference to Diamand bearing deposits record of the geographical survey of India vol. 33 pt. S. 1960.
8. वी.के. श्रीवास्तव, बी.पी. राव, पर्यावरण और परिस्थितिकी, बसुन्धरा प्रकाशन, संस्करण 1990, पृष्ठ 280